मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास

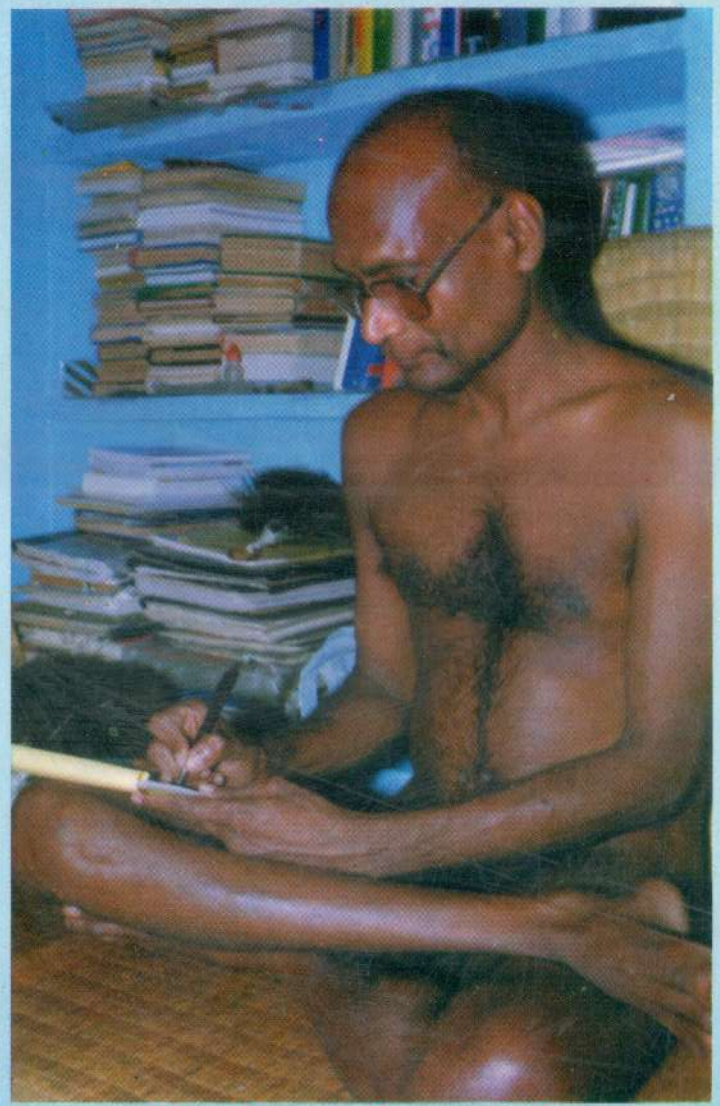

शोध पूर्ण ग्रन्थों की रचना में लीन
आचार्य श्री कनकनंदीजी महाराज

मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास

लेखक

आचार्य रत्न कनकनंदीजी गुरुदेव

Internet - WWW.JainKanaknandi.ORG

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान – ग्रंन्थांक – 118

पुस्तक : मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास

लेखक : आ.रत्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

आशीर्वाद : गणधराचार्य कुन्थुसागर जी गुरुदेव

सहयोगी : मुनि श्री विद्यानंदी जी, मुनि श्री आज्ञासागर जी

परम शिरोमणी संरक्षक : रमेश चन्द्र कोटडिया, मुंबइ, अमेरिका प्रवासी

अध्यक्ष : श्री गुणपाल जैन (मुजफ्फरनगर)

कार्याध्यक्ष : श्री गुरुचरण एम. जैन (वकील – मुंबई हाई कोर्ट)

वरिष्ठोपाध्यक्ष : श्री सुशील चन्द्र जैन – बडौत (मेरठ)

उपाध्यक्ष : (सम्पादन – प्रकाशन) 1. श्री प्रभातकुमार जैन (मु.नगर)
2. श्री राजमल पाटोदी (कोटा) 3. श्री रघुवीरसिंह (म.नगर)

मानद निर्देशक : डॉ. राजमल जैन (उदयपुर)

मंत्री : श्री नेमीचन्द्र काला (उदयपुर)

संयुक्त मंत्री : श्री पंकजकुमार जैन (बडौत)

संस्करण : प्रथम

मूल्य : ज्ञान प्रचारार्थे सहयोगी राशि : 10-00

प्रतियाँ : 2000

द्रव्यदाता : धर्मदर्शन – शोध संस्थान

लेसर टाइप सेटर्स : श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर
25, शिरोमणी बंगलोज, वडोदरा ऐक्सप्रेस हाईवे के सामने,
सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026
दूरभाष: 5892744

प्राप्तिस्थान

1. सुशीलचंद्रजी जैन
धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान, निकट दि. जैन धर्मशाला – बड़ौत (यू.पी.) Ph. N. (01234) 62845

२. नेमीचंदजी काला
न्यू अल्पना प्रिन्टर्स एण्ड स्टेशनर्स, मोदीखाना,
जयपुर-3 (राज.) Ph.No.

3. श्रीमती रत्नमाला जैन
W/o श्री राजमलजी जैन (वैज्ञानिक) 4-5 आदर्श कॉलोनी,
पुलाँ – उदयपुर - PH.N. (0294) 440793

4. श्री गुणपालजी जैन
बेहड़ा भवन ७/१ कुंदनपुरा – मुजफ्फरनगर,
PH.No. (0131) 450229

5. श्रीमती लक्ष्मी गुरुचरणजी जैन
144 मुवी टावर, नीयर मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्प्लेक्स,
अंधेरी (वे.) मुंबई PH. No. (022) 632715, 7312124

6. सेवाश्री, सुरेखा जैन
श्री वीरेन्द्रचंद्र डालचंद गडिया कपड़े के व्यापारी
– सलुम्बर – जिला – उदयपुर (राज.) Ph.N. (02906) 2043

7. श्री महावीरकुमारजी जैन
13, अग्रसेन कॉलोनी, दादाबाड़ी, कोटा PH. N. (0744) 410818

संस्थान का संक्षिप्त परिचय

1. धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान का उदात्त उद्देश्य

अखिल विश्व के सर्वश्रेष्ठ महान त्रिकाल अबाधित परम सत्य को धार्मिक आस्था से दार्शनिक – तार्किक पद्धति द्वारा वैज्ञानिक परीक्षण, निरीक्षण प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में परिशीलन, परिज्ञान, परिपालन, साक्षात्कार, संदर्शन उपलब्धि करके स्वयं को समग्रता से परिपूर्ण परम सत्य परिनिर्माण करना है । अतः इसका सर्वोपरि उद्देश्य :–

''संचवं भगवं'' सत्य ही परेश्वर है ।

''सत्यं शिवम् सुन्दरम् ।''

''सच्चिदानंदम् ।''

''उत्पाद व्यय ध्रोव्य युक्तं सत् ।''

Truth is God तथा God is Truth

व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व में उदारता पूर्ण सत्य वैज्ञानिक धर्म के माध्यम से प्रचारशीलता, प्रखरता, समरसता सुख-शांति का प्रचार-प्रसार करना है ।

2. संस्थान के कार्यक्षेत्र

(१) आचार्य कनकनन्दी के साहित्य का विभिन्न भाषाओं मे प्रकाशन करना तथा देश-विदेश मे प्रचार-प्रसार करना ।

(२) संगोष्ठी सम्बन्धी स्मारिका का प्रकाशन करना ।

(३) स्थानीय शिबिर से लेकर जिला-प्रदेश-राष्ट्र स्तरीय एवं धर्म-दर्शन विज्ञान प्रशिक्षण शिविरों का आयोज करना ।

(४) राष्ट्रीय, अन्तरर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करना ।

(५) विभिन्न क्षेत्रों के योग्य व्यक्तियों को उपाधि पुरस्कारादि देकर सम्मानित करना ।

(६) इंटरनेट तथा टी.वी. के माध्यम से आचार्य श्री के साहित्य, उदेश्य तथा प्रवचनों का प्रचार-प्रसार करना ।

(७) पशु-पक्षी, पर्यावरण, असहाय-व्यक्ति, रोगी, गरीब, पीड़ित व्यक्ति

आदिको सहायता पहुँचाना ।

(८) शोध-कार्यो के लिये, संस्थान के कार्यो के लिये साहित्य प्रकाशन सुरक्षा के लिये वैज्ञानिक उपकरण तथा कम्प्युटर सुरक्षा के लिये वैज्ञानिक उपकरण तथा कम्प्यूटर-लाइब्रेरी, इंटरनेट ओवरहेड प्रोजेक्ट आदि क्रय करना।

3. सर्वजन सहयोग

सत्य-उपासक, उदारमना, एवं परोपकारी महानुभावो! यह संस्थान 'सर्व जीव हिताय'' ''सर्वजन सुखाय'' रुपी महानलक्ष्य को आदर्श मानकर कार्यरत है। अतः यह संस्थान विश्व के द्वारा, विश्व के लिये है। अतः अर्थ सहयोग, श्रम सहयोग, शिविर मे सहभागी, संगोष्ठी मे सहभाग, उपाधि एवं धर्मावलंबी सज्जन महानुभावों को सादर आमंत्रण, आह्वान सुस्वागत करना।

बन्धुवर! आप एक विचारशील, स्वाध्याय प्रेमी और धर्मवत्सल बन्धु हैं। युवा पीढ़ी हेतु विशेष रुप से पू. आचार्य श्री कनकनन्दीजी द्वारा रचित तथा **''धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान''** और विभिन्न स्थानों से प्रकाशित ग्रन्थों के पठनोपरान्त आप निम्न प्रकार से हमे सहयोग दे सकते हैं । आपका सहयोग हमारे उदेश्य और लक्ष्य का सम्बल है –

(१) पुस्तकों के विषय में अमूल्य, उपयोगी एवं निष्पक्ष सुझाव देकर।

(२) अन्य स्वाध्याय प्रेमी बन्धुओं से पुस्तक के विषय में चर्चा करके।

(३) अपने इष्ट मित्रो एवं रिश्तेदारों को प्रकाशन की पुस्तकें पढ़ने की प्रेरणा देकर।

(४) यथाशक्ति अप्रकाशित पुस्तकों के प्रकाशन में अपना योगदान देकर

(५) प्रकाशित पुस्तकें पर्व आदि पर वितरणार्थ मंगवाकर ।

4. संस्था की नियमावली

(१) विवक्षित पुस्तक के प्रकाशमान के द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियां दी जाएँगी।

(२) ग्रंथ प्रकाशक (द्रव्यदाता) ग्रन्थमाला के आजीवन सदस्य रहेंगे तथा उन्हें ग्रंथमाला से प्रकाशित पुस्तक की एक-एक प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

(३) साधु, साध्वी, विशिष्ट विद्वज्जन और विशिष्ट धर्मायतनों को पुस्तकें

नि:शुल्क दी जायेंगी ।

(४) ग्रंथमाला से सम्बन्धित कार्य-कर्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की एक प्रति नि:शुल्क दी जायेगी।

आपका आर्थिक सहयोग

१.	आजीवन सदस्यता	5000/- रु.
२.	संरक्षक	11000/- रु.
३.	परम संरक्षक	25000/- रु.
४.	शिरोमणि संरक्षक	51000/- रु.
५.	परम शिरोमणि संरक्षक	100000/- रु.

आपका अन्य सहयोग

संगोष्ठी, शिविर आदि में साहित्य, पुरस्कार आर्थिक सहायता, श्रमदान आदि देकर।

आपका नाम साहित्य में

विशेष-संस्थान की प्रत्येक पुस्तक, स्मारिका मे संस्थान के कार्यकर्ता शिरोमणि और परम शिरोमणि संरक्षक के नाम छपेंगे । जो जिस साहित्य या कार्य मे अर्थ, श्रम, बौद्धिक सहायता करेगा उसमे उसका नाम छपेगा और सम्मानित किया जायेगा ।

आप से प्राप्त धन का सदुपयोग

ज्ञान दान आजीवन - सदस्यता आदि से प्राप्त धन, गुप्तदान, साहित्य-विक्रय से प्राप्त धन, संस्थान को प्राप्त पुरस्कार का धन, साहित्य प्रकाशन आदि उपर्युक्त संस्थान के कार्य क्षेत्रों में संस्थान के वैज्ञानिक यंत्रादि क्रय में सदुपयोग किया जाता है ।

आपके ही निवेदक
धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान
बडौत, मुजफ्फरनगर (यू.पी.)
जयपुर, कोटा, उदयपुर (राज.)
मुम्बई (महाराष्ट्र)

धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान के उद्देश्य एवं नियम

उद्देश्य : धर्म दर्शन विज्ञान एवं संप्रदाय के समन्वयक वैज्ञानिकाचार्य तथा धर्म, दर्शन, इतिहास, शिक्षा, स्वास्थ्य, मंत्र, मनोविज्ञान तथा विज्ञानादि के समीक्षात्मक शोधपूर्ण शताधिक ग्रन्थों के रचयिता आचार्य रत्न श्री कनकनन्दी गुरुदेव के मार्गदर्शन व आशीर्वाद से यह संस्थान कार्यरत है । इसका मुख्य उद्देश्य है विश्व को प्रगति के पथ पर आगे बढ़ाने के लिए धर्मान्धता तथा संकीर्ण भौतिक विज्ञान से ऊपर उठकर वैज्ञानिक धर्म का प्रचार-प्रसार करना। यह संस्थान विश्व के द्वारा, विश्व के लिये, विश्व का है अतः इसमें प्रत्येक विश्व-मंगल कामनार्थियों को, मन-मन-धन-समय से भाग लेकर सहयोग करने की भावना भाते हैं तथा आह्वान करते हैं ।

नियम : संस्थान की ओर से साधु-संघों को पुरस्कार नि:शुल्क भेंट की जाती है । पूरे सेट क्रय करने पर पुस्तकालय, वाँचनालय, शिक्षण संस्थाओं के लिये 15% छूट से शास्त्र दिये जाएगें तथा सामान्य स्वाध्याय प्रेमियों के लिये 15% छूट है, डाक खर्च अलग से है ।

आजीवन सदस्यता : 5001/- रु. अग्रिम भेजने की आवश्यकता है । द्रव्यदाता, आजीवन सदस्य व कार्यकर्त्ताओं को संस्थान की ओर से समस्त पुस्तकें नि:शुल्क दी जाती हैं । आर्थिक दृष्टि से समर्थ सामान्य व्यक्ति से उचित मूल्य इसलिये प्राप्त किया जाता है कि जिससे साहित्य का अवमूल्यन न हो, योग्य व्यक्ति को ज्ञानदान (सहयोग) हो, साधु आदि को नि:शुल्क साहित्य भेजने में आर्थिक आपूर्ति हो एवं उस सहयोग से अधिक साहित्य का प्रकाशन प्रचार-प्रसार हो । द्रव्यदाता को उस द्रव्य से प्रकाशित प्रतियों की एक दशमांश प्रतियाँ भी नि:शुल्क प्राप्त होंगी। पुस्तकें छपवाने वाले यदि लागत रुपयों में से कुछ रुपये देने में असमर्थ होंगे तो संस्थान उसकी पुस्तक छपा देगा । इसमें संस्थान का कोई निहित स्वार्थ नहीं है। परन्तु ज्ञान-प्रसार एक मात्र उद्देश्य है । जो ज्ञान-प्रेमी, ज्ञानदानी, महानुभावो, ज्ञानदान, गुप्तदान, सहायता करना चाहते हैं वे सहर्ष, स्वेच्छा से करें । क्योंकि संस्थान के लिये चन्दा, याचनादि नहीं की जाती है । अधिक सहायता करने वाले को संस्थान में पदभार भी दिया जाता है ।

आजीवन सदस्य ध्यान दें : साथ ही जिन आजीवन सदस्यों ने 1100/- रु. सदस्यता के रुप में दिये हैं उन्हें पुनः 3000/- देना पड़ेगा, इसी प्रकार जिन्होंने 2100/- से लेकर 2500/- रुपया दिया है वे पुनः 2000/- रुपया निम्न पते पर भेजने की कृपा करें । हमें ऐसा इसलिए करना आवश्यक हुआ है क्योंकि आचार्य श्री के अनेक बड़े ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं । तथा कई ग्रन्थों की माँग अधिक होने के फलस्वरुप उनको पुनः अधिक संख्या में प्रकाशन होने के साथ ही डाक व्यय अधिक होने के कारण उपर्युक्त व्यय भार बढ़ गया है । अतः आजीवन शुल्क अतिरिक्त भेजने की आवश्यकता है इसके बिना बड़े ग्रन्थ एवं नवीन ग्रन्थ आपके पास भेजने के लिए असमर्थ हैं। साहित्य प्रकाशन करनेवाले ज्ञानदानी तथा आजीवन सदस्य आदि को समस्त साहित्य निःशुल्क प्राप्त होते हैं। परम शिरोमणि संरक्षक एवं शिरोमणि संरक्षक का नाम प्रत्येक पुस्तक एवं संस्थान के लेटर हेड में आयेगा ।

संस्थान के लिए आपका सहयोग

१.	आजीवन सदस्यता	5001.0- रु.
२.	संरक्षक	11000.0- रु.
३.	परम संरक्षक	25000.0 रु.
४.	शिरोमणि संरक्षक	51000.0- रु.
५.	परम शिरोमणि संरक्षक	100000.0- रु.

जैसाकि दृष्टि की सीमित शक्ति के कारण अनन्त आकाश भी सीमित प्रतिभाषित होता है। वैसा ही अनन्त सत्य भी अल्पज्ञ के द्वारा अल्प दिखाई देता है।

प्राक् – कथनम्

जैसा कि पाण्डुलम सतत गमन करते हुए एक निश्चित परिधि में ढ़ोलायमान होता है वैसे ही कुछ महापुरुषों के कारण मानवीय–संस्कृति आगे गतिशील होती है । परन्तु दुष्टों/दुर्जनों के कारण उसकी गति प्रतिगामी ही होती हैं, जिसके कारण मानवीय–संस्कृति आगे बढ़ ही नहीं पाती हैं । पुनः पूर्व स्थितिमें आ जाती है । इस प्रकार द्वन्दात्मक गति के कारण मानवीय संस्कृति रूपी घड़ी निश्चित परिधि में ही चक्कर लगाती रहती है । कोल्हू के बैल के समान मानव स्वार्थ/ कषायरूपी खूंटी से बँधे होने के कारण गति करता हुआ भी पुनः पुनः पूर्व स्थिति में आ जाता है।

रामायण, महाभारत, मत्स्य – कच्छप – वराह, नृसिंह पुराण, भगवत् पुराण, भगवद्गीता, पद्मपुराण, हरिवंश पुराण से लेकर मध्यकालीन इतिहास तथा आधुनिक इतिहास एवं वर्तमान के अनुभव से ज्ञात होता है कि 'मानव इतिहास एक निकृष्ट संघर्ष का इतिहास है । कभी मानव धन के लिए, तो कभी धर्म के लिए, तो कभी मान के लिए, तो कभी जमीन के लिए खूनी/ बर्बर/ लोभहर्षक संघर्ष करता है, दूसरों को मारता है, स्वयं को मरवाता है, धन–जन, मान, सभ्यता – संस्कृति को निर्ममरुप से रौंदता है ।

मानव का इतिहास सुरा – सुन्दरी – शिकार – समर रूपी संघर्ष का इतिहास है। सुरा से मेरा निहितार्थ मानव अप्रयोजनभूत नशीली वस्तुओं के उत्पादन तथा सेवन, सुन्दरी से कामासक्ति, शिकार से निर्दोष पशु–पक्षी, मनुष्यों की हत्या, समर से कलह वाद–विवाद, युद्ध से है। पशु–पक्षी अप्रयोजन भूत हिंसा, विध्वंस, वैरत्व, भोगलालसा संग्रह मनुष्य से कम करता है। मनुष्य स्वयं को श्रेष्ठ मानता हुआ भी पशु–पक्षी से निकृष्ट काम करता है । पशु–पक्षी स्व–स्व प्राकृतिक आहार–विहार–व्यवहार की मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करते है । परन्तु मनुष्य समस्त

मर्यादाओं का उल्लंघन करता है, भ्रष्ट आचरण करता है । प्रदूषण फैलाता है । तथापि पशु-पक्षियों को नीच, हेय मानता है और स्वयं को महान मानता है । यदि पशु-पक्षी, वृक्ष, वनस्पतियों का योगदान मनुष्य के लिए रुक जावे तो मनुष्य के विकास की बात तो दूर रही परन्तु मनुष्य धरती पर जीवित रहेगा यह भी सन्देहास्पद है । इनसे शिक्षा लेकर मनुष्य को भी निकृष्ट संघर्ष का रास्ता छोड़कर सहयोग का रास्ता अपनाना चाहिए ।

इसी प्रकार मानव को आस्तिकता का दंभ छोड़कर सनम्र, सत्यग्राही, उदारमना बनना चाहिए। स्वयं को आस्तिक का टेकेदार मानकर दूसरों को नास्तिक, पाखण्डी, काफिर, मिथ्यादृष्टि मानकर धृणा विद्वेष, विध्वंस नहीं करना चाहिए ।

भारतीयों को स्वश्रेष्ठ उन्नत, आदर्शपरम्पराओं का गौरव होना चाहिए परन्तु अनावश्यक थोथा घमण्ड करके और भी अधिक दीन-हीन, पतित नहीं बनना चाहिए । सूर्य जिस प्रकार स्व प्रकाश से प्रकाशित होता है एवं दूसरों को प्रकाशित करता है इसी प्रकार मानव को स्व-पर प्रकाशी बनना चाहिए । कर्तव्य के बिना अधिकार चाहना चोर, डाकू, ठगों का काम है क्योंकि कर्तव्य ही हमें अधिकार दिलाता है ।

इसके लेखन कार्य में आ ऋद्धि श्री एवं प्रमिला जैन (थाणा) का योगदान रहा है अतः उन्हें मेरी समाधिरस्तु धर्मवृद्धि, ज्ञानवृद्धि आशीर्वाद ।

अखिल जीवजगत इस कृति का अध्ययन, मनन, आचरण करके निकृष्ट संघर्ष का रास्ता त्याग कर उत्कृष्ट निर्माण का रास्ता अपनायें । ऐसी महती शुभ भावना के साथ –

आचार्य रत्न श्री कनकनंदी जी गुरुदेव
चावण्ड (उदयपुर)
28-3-2000

गुरु - वन्दना

रच.: आ. ऋद्धिजी

हे पूज्य गुरुवर, हे कनकनंदी गुरुवर
भव दुःख हर्ता, मुझे तार देना २
तुमने तो समझी, तुमने तो जानी
ग्रंथो की भाषा, वाङ् मय की वाणी
मुझको पढ़ाना, मुझको सिखाना
मुक्ति का पथ तो गुरुवर बताना ॥ हे पूज्य गुरुवर
तुम ज्ञान गंगा, मुझे ज्ञान दे दो
सिद्धान्त चक्री सद्बुद्धि दे दो
कर्मों के बंधन मिटा दो हमारे
मुझको सुख शांति शिव राह देना ॥ हे पूज्य गुरुवर
उपदेश दाता जीवों के त्राता
हर शब्द गुरु का शिक्षा ये देता
सत्य को जानो, सत्य को मानो
सत्य पे चलकर शिव राह पाना॥ हे पूज्य गुरुवर
गुरुवर के मुख से बिखरे ये मोती
नयनों के मेरे बन जाये ये मोती
तत्वों के वेत्ता, ज्ञानी ये गुरुवर
सिद्धान्त का ज्ञान गुरु मुझको भी देना॥ हे पूज्य गुरुवर
गुरु ज्ञानदायी, गुरु मोक्षदायी
मोक्ष पथ में गुरु ही सहाई
मैं हूँ अज्ञानी मैं हूँ अल्पज्ञ
गुरु अपनी बुद्धि का कुछ अंश देना ॥ हे पूज्य गुरुवर

मानव का इतिहास - निकृष्ट संघर्ष का इतिहास

प्रायः हरधर्म, जीव–विज्ञान, मनोविज्ञान आदि मनुष्य को श्रेष्ठ, महान, बुद्धिमान विवेकवान, धार्मिक, सामाजिक प्राणी मानते हैं। यह मान्यता कुछ महामानवों के लिए सत्य होते हुए भी अधिकांश मनुष्यों के लिए यह मान्यता कम सत्य है; अधिक असत्य है और यहाँ तक कि पूर्ण विपरीत भी है। यह मेरा अनुभव देश–विदेश के विभिन्न धार्मिक, साहित्य, इतिहास, राजनीतिक ग्रन्थ, कानून की पुस्तकें, कथा, कहानी, किम्बदन्ती, पर्व, परम्परा, रीति–रिवाज, धर्मस्थल, वेश–भूषा, खान–पान, भाषा, व्याकरण,, लोकोक्ति के निष्पक्ष, सत्यग्राही वैज्ञानिक अध्ययन, शोध–बोध से हुआ हैं। मैं अपने इस शोध–पूर्ण लेख में किसी भी निश्चित धर्म, जाति, राष्ट्र या परम्परा को केन्द्रित करके नहीं लिख रहा हूँ परन्तु मानवमात्र को शोध का विषय बनाया हूँ क्योंकि मेरे अनुभव से कोई भी धर्म, जाति, राष्ट्र आदि के सभी मानव महान नहीं होते हैं, और किसी भी धर्म आदि के सभी मानव निकृष्ट नहीं होते हैं।

विकास के लिए/ प्रगति के लिए सम्यक् संघर्ष/ घर्षण/ पुरुषार्थ तो चाहिए जैसा कि आगे गमन के लिए एक कदम स्थिर करके दूसरे कदम को गतिशील करके आगे रखते हैं। जब कदम को आगे बढ़ाने के लिए पुरुषार्थ करते हैं तब हम पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बल के विरुद्ध संघर्ष/ कार्य/ पुरुषार्थ/ बल प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार जलस्थल, आकाशयान को भी गति करने के लिए संघर्ष करना पड़ता है। लट्टू (भउंरी) जब भ्रमण करती है तब संघर्ष के कारण ही खड़ी होकर घूमती है। जब उसका संघर्ष एवं भ्रमण शून्य होता है वह गिर जाती है। उसका संघर्ष एक साथ वायु तथा पृथ्वी/ आधार में होता है। इसी प्रकार विज्ञान की अपेक्षा

ब्रह्माण्ड के हर आकाशीय पिण्ड/ सूर्य, नक्षत्र ग्रह, उपग्रह परस्पर को आकर्षित करते हुए आकाश में भ्रमण करते हैं, परन्तु जब कोई आकाशीय पिण्ड अपने गति पथ से विचलित/ भ्रष्ट/ च्युत होकर अपने अन्य आकाशीय पिण्ड से टकराता है, घर्षण करता है तब महा विस्फोट/ विनाश/ विप्लव होता है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार कुछ करोड़ो वर्ष पूर्व पृथ्वी के साथ एक धूमकेतु के टकराव के कारण विशालकाय डायनासोरों का विनाश हो गया। जिनके कंकाल पृथ्वी में अभी दबे पड़े हुए हैं। इसी प्रकार मानव समाज में जो विभिन्न धर्म, जाति, राष्ट्र आदि में परस्पर विध्वंसकारी घर्षण / संघर्ष टकराव होते रहते हैं; जिससे महामानवों द्वारा उपलब्ध प्रचारित – प्रसारित, संस्थापित ज्ञान–विज्ञान, सभ्यता– संस्कृति रुपी जीवन्त– महानता तो मर जाती है और उसके निर्जीव/ निष्प्राण/ परम्परा/ रुढि–रीतिरिवाज रुपी कंकाल पृथ्वी में यत्र–तत्र–सर्वत्र पड़े रहते हैं। उस कंकाल को ही संकीर्ण, दढी, घमण्डी, रुढिवादी अविवेकी, मूर्ख, अन्धानुकरणशील, सत्ता–सम्पति – प्रसिद्धि के लालची मानव जीव मानकर पुन–पुनः संघर्षकरता रहता है जैसा कि कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता रहता है और दूसरे कुत्तों से उस हड्डी की सुरक्षा के लिए भोंकता है लड़ाई झगड़ा करता है। निम्न में इस विषय को विश्लेषित करने के लिए कुछ बिन्दुओं के माध्यम से प्रकाश डाल रहा हूँ।

भाव ही भाग्य के निर्माता, सम्बर्द्धन कर्ता, नियामक तथा विध्वंसक है।

धर्म के लिए संघर्ष

वस्तुतः सत्य धर्म "सर्वजीवहितकारी" : "सर्वजीवसुखकारी" होने से सबसे श्रेष्ठ/ ज्येष्ठ/ श्रेय/ प्रेय/ उपादेय है। वह धर्म है – सत्य, अहिंसा, सहिष्णुता, समता, सदाचार, क्षमा, नम्रता, सरलता सहजता आदि। परन्तु इस धर्म को तो अपवाद रूप में बहुत ही कम महापुरुष जानते, मानते, अपनाते हैं जैसा कि बहुमूल्य रत्न भूपृष्ठ पर कम उपलब्ध होते हैं और मिट्टी, पत्थर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होते हैं वैसे ही अनुपात सत्य धार्मिकों का तथा बाह्य धार्मिकों के हैं। ये बाह्य – धार्मिक सत्य, अहिंसा, समता को न जानते हैं, न मानते हैं, न अपनाते हैं, वे केवल निष्प्राण कुछ धार्मिक कंकाल को ही धर्म के रूप में जानते, मानते तथा अपनाते हैं और जो उनके समान धर्म पालन नहीं करते हैं, भले वे सत्य–धार्मिक हों उन्हें वे अधार्मिक/ पापी/ अज्ञानी/ नास्तिक/ नीच/ मिथ्यादृष्टि/ काफिर मानकर तथा अपना शत्रु मानकर उन्हें कष्ट देना। मारना/ विध्वंस करना अपना धार्मिक कर्तव्य मानते हैं और इससे स्वर्ग/ मोक्ष/ प्रभुकृपा की प्राप्ति होती मानते हैं। मानव इतिहास में धर्म को लेकर जितने संघर्ष होते हैं उतने संघर्ष, सत्ता, सम्पत्ति आदि को लेकर भी नहीं होते हैं। इसके कारण मानव की एकता/ समता/ सम्पत्ति/ संस्कृति – सभ्यता, संतति की जितनी क्षति होती है इतनी क्षति और किसी भी कारण से नहीं होती है। इसके कारण एक दूसरों की अच्छाईयों को भी स्वीकार नहीं करते हैं और अपनी बुराईयों को भी त्याग नहीं करते हैं। इसके कारण मानव समाज अखण्ड पृथ्वी को भी टुकड़े–टुकड़े (देश) में कृत्रिम रुप से छिन्न–भिन्न कर डालता है। एक भूखण्ड में रहनेवाले विभिन्न धर्मावलम्बी भावात्मक आदि से भी विखण्डित हैं यदि ऐसे धर्म का निर्मूल विध्वंस हो जाता और मानव ऐसे धर्म से रहित होता तो अधिक सुखी सम्पन्न हो जाता। जैसा कि जैन धर्म में वर्णन है कि भोग भूमि में मानव किसी भी

प्रकार की रीति–रिवाज, परम्परा, पूजा–पाठ, प्रार्थना, बलिदान, जप, तप, सुखमय, उपवास आदि नहीं करते हुए भी दीर्घकाल तक नीरोग, स्वस्थ, सुखमय जीवन जीते थे क्योंकि वे नम्र, शान्त, सरल, भद्र, सहिष्णु, निराभिमानी हित–मित–मधुर वचन बोलनेवाले तथा नम्र व्यवहार करने वाले थे।

कहा भी हैं –

"धर्मः शब्द मात्रेण बहुशः प्राणिनोऽधमाः।
अधर्ममेव सेवन्ते विचार जड़ चेतसा ॥ (पद्मपुराण)

अर्थात् बहुशः अधम प्राणी विचार जड़ चित से अधर्म को ही सेवन करता है।"

श्रेष्ठता के लिए संघर्ष -

प्रत्येक जीव शुद्ध द्रव्य दृष्टि से ज्ञान, सुख, शक्ति, शान्ति, विभूति, प्रभुत्व, ईशत्व आदि महान गुणों का भण्डार होने के कारण प्रत्येक जीव श्रेष्ठ ज्येष्ठ हैं। प्राकृतिक रूप से प्रत्येक द्रव्य अपने स्वःस्वरुप को प्राप्त करने के लिए सतत् प्रयत्नशील होता है। इसीलिए प्रत्येक जीव को तथा मानव को अपनी श्रेष्ठता/ ज्येष्ठता /महानता को प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ/प्रयत्न/संघर्ष करना प्राकृतिक है, योग्य है। इससे ही मानव महामानव /भगवान् /महान् ज्ञानी–विज्ञानी/ ऋषि/ मुनि/ युगपुरुष/ क्रान्तिकारी/ लोकसेवक बनता है। इसके बिना विकास के परिवर्तन में विनाश, अवसाद, विषाद ही संभव है। जैसा कि योग्य पुरुषार्थ रूपी संघर्ष से योग्य मिट्टी से पात्र बनता है किन्तु योग्य रीति से यदि पात्र को सुडोल बनाने के लिए पीटा नहीं जाता है तो वह पात्र कुडोल बनेगा या खण्ड–विखण्ड हो जायेगा। वैसा ही यदि अयोग्य रीति से श्रेष्ठ बनने का

कार्य किया जायेगा तो कनिष्ठ /निकृष्ठ /नष्ठ /भ्रष्ट बन जायेगा। ऐसे ही मानव स्वयं को श्रेष्ठ बनाने के लिए या श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए जो उपाय/ संघर्ष करते हैं वह सब निकृष्ठ, नष्ट भ्रष्ट करने के लिए करते हैं। क्योंकि मानव अपना उदात्त, महान, गरिमामयी, आचार-विहार, आहार, उच्चार, व्यवहार के कारण श्रेष्ठ बनता है, न कि स्वयं की अहं-मान्यता तथा दूसरों के प्रति निकृष्ट विचार /उच्चार व्यवहार से। मानव स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए कभी अपना धर्म को, तो कभी अपने जाति को, तो कभी अपने राष्ट्र को, तो कभी अपनी सत्ता को, सम्पत्ति विभूति, सुन्दरता, शक्ति, बुद्धि, तपस्या, आयु आदि को दूसरों से श्रेष्ठ/ ज्येष्ठ सिद्ध करता है। एतदर्थ वह गर्व, कलह, वाद-विवाद, युद्ध, विप्लव, क्रान्ति, शोषण, हत्या, विनाश आदि करता है । इसका फल है वर्ग संघर्ष, जाति संघर्ष, नरल संघर्ष, राष्ट्रसंघर्ष, भाषा-संघर्ष, संस्कृति संघर्ष, सभ्यता संघर्ष, पीढ़ी संघर्ष आदि-आदि। विडम्बना यह है कि मनुष्य स्वयं की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए तो संघर्ष करता हैं परन्तु श्रेष्ठता के कार्य करके श्रेष्ठ नहीं बनता है।

महावीर भगवान के अनुसार स्व-पर राष्ट्र आदि की रक्षा के लिए विरोधी हिंसा करने वाला तो धार्मिक हो सकता है, परन्तु जाति, बल, रुप, ज्ञान तप आदि का मद करने वाला अर्थात् दूसरो से इन-इन दृष्टियों से श्रेष्ठ मानकर गर्व करने वाला धार्मिक नहीं हो सकता है। श्रेष्ठता की अहंमान्यता को इसीलिए मद कहा गया है कि जिस प्रकार मद्य मदकारी होता है और उसके नशा से व्यक्ति विवेकहीन होकर कुछ योग्य - अयोग्य कहता है /करता है और स्वयं को श्रेष्ठ मानता है/ उसी प्रकार मद/ गर्व अहंकार से भी होता है।

जीवन जीने के लिए संघर्ष -

महावीर भगवान का सिद्धान्त है "जीओ और जीने दो" अर्थात् प्रत्येक जीव स्वयं सुख शांतिमय जीवन जीयें एवं दूसरे जीवों को भी जीने दें। क्योंकि उत्सर्ग रुप से प्रत्येक जीव जीना चाहता हैं, मरना कोई नहीं चाहता है। जीवनावस्था में ही विकास के लिए पुरुषार्थ होता है, जीवन लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न होता है। मृत्यु के समय अत्यन्त पीड़ा होती है। उसमें भी अप्राकृतिक मृत्यु / हत्या में तो और भी अधिक पीड़ा होती है। इसीलिए जीव मरने से डरता है। अतएव अहिंसा दया, करुणा, अभयदान, परोपकार, सेवा को महान् धर्म रुप में स्वीकार किया गया है। इसे प्रत्येक उदारवादी, धर्म, राजनीति, कानून, समाज व्यक्ति ने मान्यता दी है। ऐसा महान 'जीवन जीने' के लिए प्रयत्न/ पुरुषार्थ/ व्यवस्था/ संघर्ष होना स्वाभाविक/ प्राकृतिक/ विधेय हैं। जीवन जीने केलिए आत्मरक्षा/ प्राणवायु/ जल, भोजन/ निवास/ वस्त्र/ औषधि/ प्राकृतिक विपरीत अवस्थाओं में जीने के लिए विभिन्न साधनादि की आवश्यकता होती है। इसके लिए जीव को सतत प्रयत्न/ पुरुषार्थ/ संघर्ष करना पड़ता है। यह संघर्ष यदि "जीओ और जीने दो" "जीवो जीवस्य रक्षणम्" के लिए होता है तो उत्तम है, धर्म है, विकास का कारण है परन्तु यदि यह संघर्ष "जीओ और मरने दो" "जीव जीवस्य भक्षणम्" "Live and let kill" के लिए होता है तो निकृष्ट है, अधर्म है, विनाश का कारण है। कुछ महामानवों को छोड़कर अधिकांश व्यक्तियों का संघर्ष द्वितीय श्रेणी का होता है। वे "परकाज हेतु सज्जन घरे शरीर" "परोपकाराय सतां विभूतयः" "परस्परोपग्रहो जीवानाम्" उदारपुरुषाणां "वसुदेव कुटुम्बकम्" "Serve to humanity is serve to god" के विपरीत "परपीडा हेतु दुर्जन घरे शरीर" "परोपकाराय दुष्टं भूतयः" " परस्पर विग्रह गीवानाम्" "अनुदार पुरुषाणां वपुरेव कुटुम्बकम्" Live and let kil को मानतें हैं, जानते हैं, आचरण करते हैं। कोई

जीने के लिए दूसरे जीवों को मारकर उसका माँस भक्षण करता है. कोई दूसरे जीवों के अवयव से विभिन्न सामग्री यथा – जूते, चप्पल, बैल्ट, बेग, नेलपोलिश, लिपिस्टिक, पाउडर, साबुन, टूथपेस्ट, औषधि, रंग–रसायन, व्यंजन, पोषक आदि निर्माण करता है, कोई विक्रय करता है तो कोई प्रयोग करता हैं, कोई दूसरे जीवों को नहीं मारता है न ही हिंसात्मक वस्तुओं का उपयोग करता हैं परन्तु दूसरे के श्रम–साधन सम्पत्ति, उपलब्धिओं का शोषण करता है, दुरुपयोग करता है, जीवों के अवयवों का प्रयोग करने वाला/ भक्षण करनेवाला तो साक्षात् ''जीव जीवस्य भक्षणम्'' के अनुसार आचरण करता है तो दूसरों के श्रमादि का शोषण करनेवाला परोक्ष रुप से ''जीव जीवस्य भक्षणम्'' का परिपालन करता है। दोनों में से कोई कम दोषी या अधिक दोषी एक टुक में कहना संभव नहीं हैं। प्रथम प्रकार के लोग सामान्यतः पशु–पक्षी आदि को मारते हैं, कष्ट देते हैं तो दूसरे प्रकार के लोग सामान्यतः मनुष्य को कष्ट देते हैं, शोषण करते हैं, और कुछ व्यक्ति दोनो प्रकार का कार्य करते हैं। कसाई, शिकारी, माँसभक्षी, शोषणकर्ता, व्यापारी, उद्योगपति, पूँजीपति, मालिक, भूपति, जमीनदार सामन्त, राजा–महाराजा, चक्रवर्ती, चोर, डाकू, तस्कर, आतंककारी, आक्रमणकारी, राजादि, हिंसक, क्रूर, लुटेरे, भ्रष्टाचारी आदि उपर्युक्त तीनों भेद के भेद–प्रभेद हैं। वैज्ञानिक डारविन के अनुसार जो जीव शक्ति–शाली होता है वह जीवनरूपी संघर्षमें जययुक्त होता है जीवित रहता है जो निर्बल होता है वह परास्त होता है और विनाश को प्राप्त करता है, कार्ल मार्क्स के अनुसार मानव का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास है और दार्शनिक हेंगले विश्व को द्वन्दात्मक मानते हैं। जैन, बौद्ध, हिन्दु धर्म में संसार को दुःखपूर्ण बताया गया है। उपर्युक्त सिद्धान्त परस्पर में कुछ समानता को लिए हुए है। विश्व इतिहास, पुराण और अनुभव भी इसे सिद्ध करते है। शरीर निर्वाह के उपाय से लेकर गृहक्लेश, महान् भयंकर क्लेश, युद्ध तक मे उपयुक्त विषय परिलक्षित होता है।

सुख के लिए संघर्ष

प्रत्येक जीव सुख चाहता है, दुःख से दूर भागता है यह क्यों न हो ? क्यों कि अक्षय अव्याबाध अनंत सुख जीव का शुद्ध/ प्राकृतिक सद्गुण/ धर्म है/ इसके साथ–साथ सुख से जीव को आल्हाद/ शान्ति/ प्रसन्नता मिलती है। परन्तु दुःख जीव की वैभाविक अवस्था है तथा दुःख से जीव को संक्लेश/ अशान्ति/ अप्रसन्नता मिलती है। इसीलिए स्वयं सुख प्राप्ति के साथ–साथ दूसरों को सुख पहुँचाना धर्म है, पुण्य है, पवित्र कर्त्तव्य है। इसके लिए प्रत्येक जीव पुरुषार्थ/ संघर्ष/ प्रयत्न करता है। कोई धर्म पुण्य, ज्ञान, प्रशंसा, धन जन चाहे या नहीं परन्तु सुख को सब कोई चाहते हैं; भले ही वह वृक्ष, कीट पतंगा, पशु–पक्षी, ज्ञानी–अज्ञानी, धार्मिक, अधार्मिक, सज्जन–दुर्जन तथा साधु ही क्यों न हो। इसे प्राप्त करने के सामान्यतः धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चार पुरुषार्थ हैं। मोक्ष सुख ही वस्तुतः सुख है। अर्थ एवं काम सुख तो सुखाँ भास है। पीडा का तात्कालिक उपशमन है, रुपान्तरण है अर्थ एवं काम सुख धर्म सहित होने पर सुखाभास प्रतीत होता है परन्तु धर्म रहित होने पर सुखाभास नहीं रहता है किन्तु दुःखरूप हो जाता है। मोक्षसुख भी सत्य–समता की साधना से मिलता है। परंतु सत्य–समता भी साधना के बिना जो मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिए तप, त्याग, धर्म की साधना करता है उसे मोक्ष सुख तो प्राप्त नहीं होता हैं किंतु अर्थ–काम सुख भी नहीं मिल सकता है। वह 'अतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट, सर्वत्र भ्रष्ट' दुःखी रहता है। जिस प्रकार प्यासा मृग गर्मी में मृग मरीचिका को जल मानकर उसे प्राप्त करने के लिए दौड़ता है परंतु वह जितना–जितना आगे दौड़ता है,वह मृग मरीचिका उतना ही उतना आगे बढ़ती ही जाती है। वह और भी श्रम तथा प्यास से अधिक दुःखी होता है। कभी कभी तो इस जलाभास को प्राप्त करने के पुरुषार्थ/संघर्ष से मृत्यु को भी प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार अधिकांश मनुष्यों की दशा सुख प्राप्ति के संघर्ष में होती है।

धन सुख के लिए स्वयं इतना संक्लेश, पाप, अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार करता है जिससे स्वयं तो दुःखी रहता है, दूसरो को भी दुःखी करता है। धनार्जन में दुःखी, संचय-संरक्षण में दुःखी, व्यय में दुःखी क्षय में दुःखी होता है और इससे दूसरों को भी दुःखी करता है। हस्तिनापुर के आधे राज्य से क्या कौरवों का पेट नहीं भरता? जीवनोपयोगी सामग्रियाँ क्या उन्हें नहीं मिलतीं ? परन्तु उन्होंने पाण्डवों के न्यायोचित अर्ध राज्य को प्राप्त करने के लिए भी अन्यायपूर्ण संघर्ष किया जिससे लाखों हाथी, घोड़े, सेना के साथ-साथ स्वयं भी मरे। इसी प्रकार मनुष्य अनैतिक रुप से धनार्जन/ धनसुख के लिए जीवनरूपी महाभारत युद्ध में स्व-पर के धन-जन-सुख को विध्वंस कर डालता है। इसी प्रकार काम सुख के लिए रावण के समान स्वपर को कष्ट पहुँचाता है। भतृहरिने कहा भी है :-

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्ता वयमेव तप्ता।
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णो, कालो न जाता वयमेव जाता ॥

अर्थात् मैंने भोगों को तो नहीं भोगा वरन् भोगों ने ही मुझे भोग लिया। तप को तो मैंने नहीं तपा किन्तु तप ही मुझे तप लिया। तृष्णा मेरी जीर्ण नहीं हुई मैं ही जीर्ण हो गया तथा काल तो नहीं गया (मरा) मैं ही चला गया (मर गया)।

जीव सुखाभास के लिए जितना पुरुषार्थ/ संघर्ष करता है उसका बहुत ही कम भाग सम्यक् पुरुषार्थ सच्चासुख के लिए यदि करता तब उसे अक्षय, अपार, अनंत सुख प्राप्त होता। परन्तु जिस प्रकार चक्षु स्वयं को तो नहीं देख पाती हैं उसी प्रकार अधिकाश मानव स्वयं के गुण-दोषो को नहीं देख पाते हैं। स्वयं को धार्मिक, श्रेष्ठ, सुखी बनाने के लिए स्वयं में निहित अधार्मिकता, निकृष्टता, दुःखदायी तत्वों के साथ संघर्ष नहीं कर पाते हैं। इसीलिए मानव इतिहास एक निकृष्ट, बर्बर, अनैतिक, अप्रयोजन भूत, अयोग्य संघर्ष है। जिससे मानव का विकास कम हो पाता है परन्तु विनाश अधिक होता है। अभी 21वीं शताब्दी में जो कुछ विकास, सुख, समृद्धि, संस्कृति, सभ्यता ज्ञान-विज्ञान, शक्ति,

शांति-समता-क्षमता की उपलब्धि है यह मानव के दीर्घकालीन पुरुषार्थ के अनुपात से जधन्य है, निकृष्ट है, तुच्छ है, हास्यास्पद, लज्जाजनक है। यह उपलब्धि वैसी उपलब्धि है जैसा कि बहुमूल्य वस्तुओं के जल जाने के बाद उसके राख, अंगार, धुँआ की उपलब्धि।

कुछ नीतिकारों ने धर्म, ज्ञान, दानादि से रहित मनुष्य को पशु कहकर पशुजाति का अवमूल्यन किया हैं, उसका अपमान किया है। मेरे अनुभव से तो कुछ महापुरुषों को छोड़कर अधिकांश मनुष्यों की तुलना पशु-पक्षी यहाँ तक कि वृक्ष-वनस्पति के साथ करना भी अन्याय है, अनैतिक है क्योंकि मनुष्य जितना बर्बर, क्रूर, अन्यायी, अत्याचारी, पापाचारी, भ्रष्ट, कृतघ्न, स्वार्थी, कलहप्रिय, युद्ध-पिपासु, हत्यारा, हिंसक, कामी, लालची, मर्यादाविहीन, उच्छंखल, शोषणकारी, घूसखोर, प्रकृतिविरोधी, प्रदूषणकारी है वैसा पशु आदि नहीं हैं। वृक्ष-वनस्पति से प्राणवायु, फल-फूल, लकड़ी, औषधि, वस्त्र, छायादि मिलती हैं तो पशुओं से दूध, दही, घी, गोबर, श्रम प्राप्त होते हैं, और पक्षियों से पर्यावरण की शुद्धता रहती है। वे जीवित या मरण अवस्था में भी उपकारी हैं। उनका मल भी खाद आदि रुप में गुणकारी है परन्तु मनुष्य जीवित अवस्था में भी अपकारी है तो मरने के बाद भी उसके अन्तिम संस्कार के लिए अनेक मिथ्याचार, आडम्बर, पापाचार होने से तथा साधन, श्रम, धन, समय का दुरुपयोग होने के कारण अपकारी है। इसीलिए हे मानव! गर्व करना छोड़कर, विध्वंसात्मक संघर्ष करना छोड़कर, आडम्बर मिथ्याचार का परित्यागकर, सनग्र सत्याग्रही, निश्चल, पवित्र, सरल, सहज, बनकर सम्यक् रचनात्मक पुरुषार्थ के बल पर "सत्यं शिवं सुन्दरम्" "सच्चिदानंदम्" अजर, अमर, अक्षय, सुखभोगी बनो।

आददम्मो सुही होई हथई, परथई (भ-बुद्ध) स्वआत्म द्रव्य को नियन्त्रण करने वाले इस लोक में सुखी होते हैं परलोक में सुखी होते हैं।

नास्तिक जो आस्तिक से श्रेष्ठ
(धार्मिक भ्रष्टाचार नियन्त्रक नास्तिक)

१. धार्मिक क्षेत्र के नास्तिक

वस्तुतः धर्म सर्व जीव हितकारी, सर्वजीवसुखकारी, सर्वोदय, सार्वभौम, शाश्वतिक, सम्पूर्णसत्य, न्याय, विज्ञान, लोकतंत्र, साम्यवाद, समाजवाद विज्ञान है। जिस प्रकार अनंत आकाश में समस्त ब्रह्माण्ड समाहित है उसी प्रकार धर्म में समस्त अच्छाईयाँ समाहित हैं। अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक, जीवात्मा से लेकर परमात्मा तक में धर्म निहित हैं। क्योंकि निज–स्वशुद्ध स्वरूप/ गुण लक्षण ही स्व–स्व धर्म है। प्राचीन सत्य शोधक मनीषियों ने धर्म में उपर्युक्त गुणों को निहित किया था इसीलिए वे जब भी धर्म शब्द प्रयोग करते थे तब उनका अभिप्राय उपर्युक्त होता था। वे नैतिक दैनिक आचरण विचार, व्यवहार, उच्चार से लेकर सर्वोच्च, सत्योपलब्धि स्वरूप स्वात्मोपलब्धि रूप मोक्ष/ मुक्ति/ कैवल्य/ परिनिर्वाण भी धर्म में ही गर्भित किया करते थे। परन्तु सत्य – तथ्य से अनभिज्ञ, मूढ़जन उसे न जान पाते हैं, न मान पाते हैं, न आचरण ही कर पाते हैं। जैसा कि आकाश अमूर्तिक अनंत होने पर भी सामान्यतः चक्षु को वह सवर्ण (नीला या विभिन्न वर्ण) अर्ध गोलाकार दिखाई देता है वैसा ही सामान्य जन को धर्म का वास्तविक परिज्ञान तो होता नहीं परन्तु उसके विकृत रूप को ही धर्म मानकर आचरण करते हैं जिससे उनका आचरण भी विकृत होता है। कहा भी है –

धर्म शब्द मात्रेण प्रायेण प्राणिनः अधमा।
अधर्मीमेव सेवन्ते विचार जड़ चेतसा ॥

अर्थात् प्रायशः अधर्म प्राणी विचार जड़ होकर धर्म शब्द से अधर्म ही सेवन करते हैं।

जैसा कि मन, वचन, काय की पाशविक प्रवृत्तियों को नियन्त्रण/

त्याग/ बलिदान/ नष्ट/ क्षय से धर्म होता है, स्वर्ग–मोक्ष मिलते है: को विकृत करके पशुपक्षी के बलिदान से धर्म होता है/ स्वर्ग–मोक्ष मिलते हैं/ प्रभुकृपा होती है को प्रचलित कर दिया गया। इतना ही नही देव देवियों की प्रसन्नता के लिए, रोग दूर करने के लिए/ वर्षा/ सुख–समृद्धि, पुत्रप्राप्ति, शत्रुनाश के लिए भी पशुबलि के साथ, शिशुबलि, नरबलि तक प्रचलित हुआ। स्वात्मा की पवित्रता/ प्रसन्नता शुद्धता/ उपलब्धि रूप सत्य सनातन धर्म को छोड़कर आवास्तविक, काल्पनिक, विकृत, देवीदेवता, भूतप्रेत तथा उनकी तदाकार या अतदाकार जड़मूर्ति, चिन्ह तथा वृक्ष, नदी, पर्वत, समुद्र, पत्थर, अग्नि, पानी, वायु, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्र, ग्रह को प्रसन्न करने के लिए पूजा–पाठ, स्तुति, प्रार्थना, जप, कीर्तन, होम, यज्ञ, पशु – पक्षी – नरबलि तक करने लगे। उन्हें खिलाने–पिलाने, ओढ़ाने श्रृंगार, स्नान, आचमन करने लगे। क्या देवी देवता मनुष्य से भी अधिक क्रूर, निष्ठुर, दृढी, हठी, हिंसक, अन्यायप्रिय, घूसखोरी, गरीब, असहाय हैं जिन्हें उपर्युक्त व्यवस्थायें मनुष्य से चाहिए ? यदि है तो मनुष्य उनसे श्रेष्ठ है और वे मनुष्य से निकृष्ट हैं। तब तो मनुष्य की सेवा पूजादि उन्हें करनी चाहिए। जो उपर्युक्त मिथ्या धर्म पालन करते हैं वे वास्तविक, धार्मिक नहीं हैं, वास्तविक सुख, शान्ति, मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं। जिन्होंने ऐसे स्वपर सर्वत्र दुःखदायी धर्म को नकारा और वास्तविक धर्म का पालन किया उन्हें वे धर्मान्धजन नास्तिक/ धर्मबाह्य/ काफ़िर मानते है और उन्हें कष्ट भी देते है। महानतम वैज्ञानिक, आध्यत्म निष्ठ भ. महावीर तथा महात्मा बुद्ध को भी नास्तिक की श्रेणी में रखा गया। आज वैज्ञानिक अनुसन्धानात्मक युग में महान् वैज्ञानिक आइन्स्टाईन के महान् सिद्धांत सापेक्षवाद से भी महावीर भगवान का अनेकान्त सिद्धान्त तथा स्याद्वाद श्रेष्ठ हैं, वैज्ञानिक रदरफोड के परमाणु सिद्धान्त से भी भगवान् महावीर का परमाणु सिद्धान्त श्रेष्ठ है, विज्ञान की पारिस्थिति की तथा पर्यावरण शुद्धता – सुरक्षा से भी भगवान महावीर के अहिंसा, अपरिग्रह "परस्परोप ग्रहो जीवानाम्" तथा विश्व व्यवस्था श्रेष्ठ हैं। भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु के वनस्पति विज्ञान से भी भगवान्

का वनस्पति विज्ञान श्रेष्ठ है, नोबेल पुरस्कार विजेता अमेरिका निवासी भारतीय वैज्ञानिक हरगोविन्द खुराना के जिन्स सिद्धान्त (D.N.A., R.N.A.) से भी भगवान महावीर का कर्म सिद्धान्त अत्यन्तिक श्रेष्ठ है, कार्लमार्क्स, थोरो, लेनिन, माओत्सेतुंग के साम्यवाद से भी महावीर के सर्वोदय – साम्यवादी सिद्धान्त श्रेष्ठ हैं। तथापि कुछ तथाकथित धार्मिकों की द्रष्टि से भगवान महावीर घोर नास्तिक/ काफिर/ धर्मबाह्य/ असामाजिक हैं / एसा ही अन्य नास्तिकों के बारे में यथायोग्य जान लेना चाहिए।

सुकरात जैसे दार्शनिक को विष पिलाना, ईसामसीह जैसे सज्जन को जीवित ही क्रास में लोहे की कीलियों से ठोकना, गैलेलियो, कोपर–निकस जैसे वैज्ञानिकों को यातनायें देना, मीराबाई जैसी सुकोमल – निर्दोष राजवधू को विष पिलाना, जीवन्त अहिंसक दिगम्बर जैन मुनियों को जीवित ही घानी में पेल डालना आदि घटनायें तथा कथित नास्तिकों की बर्बरता तथा नास्तिकों की श्रेष्ठता स्वयं ही सिद्ध कर देती है। अभी भी अनेक पाखण्ड – धूर्त, निष्ठुर धार्मिक आस्तिक जन हैं जो सरल – सहज, भद्र–नम्र गुणग्राही व्यक्तियों को भी अधार्मिक मानकर सताते रहते हैं। धर्मान्ध आस्तिकों की विशेषता हैं, हृदय की कठोरता तथा उनकी धार्मिक परम्पराओं को कठोरता से पालन करना भले ही उनसे दूसरों को हानि क्यों न हो। और इनकी दृष्टि में जो नास्तिक है उनकी विशेषता है हृदय की कोमलता तथा सत्य को सनम्र भाव से, दृढ़ता से परिपालन करना दूसरों को अल्प भी कष्ट न हो एसी पवित्र भावना के साथ।

तथाकथित आस्तिकों के कारण ही मानव समाज अनेक खण्ड विखण्ड हुए एवं हो रहे हैं, अनेक समस्याओं जन्म ली और ले रही हैं, अनेक विद्वेष, कलह, युद्ध हुए और हो रहे हैं, अनेक राष्ट्र विखण्डित हुए और हो रहे हैं। गाया जाता है कि " मजहब नहीं सिखाता है आपस में बैर रखना " परन्तु प्रायोगिक रूप से पाया जाता है कि "मजह भी सिखाता है आपस में वैर करना" इसीलिए तो गरीब, मजदूर, उद्धारक, राजनीति में साम्यवाद के संस्थापक कार्ल मार्क्सने आह्वान

किया था "धर्म अफीम है, इससे व्यक्ति विवेकहीन हो जाता है। 'God was a ded' (भगवान मर गया है) धर्म की शवयात्रा निकालो, महान् क्रान्तिकारी राष्ट्र भक्त चन्द्र शेखर आझाद न तो स्वयं को पूर्ण नास्तिक घोषित किया था। इसके कारण अनेक उदारवादी वैज्ञानिक, चिन्तक, समाजसुधारक, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार, क्रान्तिकारी नेताओंने, धर्म (पंथ, सम्प्रदाय धर्मान्धता, धार्मिक कट्टरता) को नकारा। इनके सत्य–तथ्य तार्किकपूर्ण वैज्ञानिक, उदारवादी–सहिष्णु पूर्ण विरोध के कारण धार्मिक भ्रष्टाचार में कुछ मन्दता आयी है। इसीलिए पहले जितनी धार्मिक उन्मादता थी अभी उतनी नहीं है।

२. सामाजिक क्षेत्र के नास्तिक

कुछ संकीर्ण स्वार्थी, मूढ, कठोर, क्रूर व्यक्तियों ने समाज में धर्म के नाम पर अन्याय, पक्षपात, ऊँच–नीच, भेद–भाव काला–गोरा, पूजनीय–घृणित, मालिक–मजदूर, शोषक–शोषित, शासक–शासित, रक्षक–रक्षित, रीति–रिवाज परम्परा को प्रारंभ किया। एसी निष्कृष्ट रीति आदि को जो स्वीकार नहीं किया करते उन्हें ही नास्तिक करार कर दिया गया। उदाहरण के लिए काला–गोरा भेदभाव एवं दास प्रथा लें वंशानुगत/· वातावरण/ जिन्स के कारण जिन का चर्म काला हो उसे पशु से भी नीच माना गया और उससे क्रूर, अभद्र व्यवहार किया गया। उसे पशु से भी और बदतर रूप से बान्ध कर रखा गया काम मे लिया गया, भोजन–पानी – आवास दिया गया। दास–प्रथा भी इसका एक रूप है। महामानव, दयालु अमेरिका के राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने इन प्रथाओं को दूर करने के लिए क्रान्ति की तो उनका भी विरोध हुआ। इसी प्रकार दक्षिण अफ्रीका में महात्मा गांधी ने असहकार रूप से इस प्रथा को नकारा तो उनका भी विरोध हुआ। ऐसा ही सती–द्राह प्रथा का विरोध राजा राम मोहनराय ने किया तो उनका भी घोर विरोध हुआ। महात्मा फूले तथा सरस्वती बाई फूले जब भारत में पुनः स्त्री–शिक्षा का प्रचार–प्रसार करने लगे तो उनका भी स्वागत मिट्टी, पत्थर,

गोबर मारकर किया गया। इसी प्रकार बन्धुआ – मजदूर, बाल मजदूर, दहेज, मृत्युभोज, शादी में अनावश्यक खर्च, बाल–विवाह बाह्याडम्बर को नकारने वालों को लोग सहयोग नहीं करते हैं।

३. राजानीति के नास्तिक

राष्ट्र की प्रगति, सुरक्षा, समृद्धि, सुख–शान्ति के लिए राजनीति की आवश्यकता होती है। इस नीति में अन्याय, अत्याचार शोषण, विषमता को दूर करने के लिए दोषी को रोग चिकित्सा की पद्धति के अनुसार समुचित शारीरिक, आर्थिक दण्ड भी दिया जाता है। इसका कारण यह है कि सबल, समर्थ, धनी, सत्तासंपन्न व्यक्ति दुर्बल, असहाय, गरीब व्यक्तियों का शोषण न करे। इस नीति का मुख्य उद्देश्य होता है ''परित्राणाय हि साधुनां विनाशनाय च दुष्कृतां धर्म संस्थापनाथाय'' अर्थात् निर्दोष, न्यायशील व्यक्तियों की सुरक्षा, समृद्धि के लिए तथा अन्यायी, अत्याचारियों के विनाश के माध्यम से अन्याय अत्याचार के विनाश के लिए तथा धर्म, सदाचार, न्याय की स्थापना के लिए राजदण्ड दिया जाता है। इसीलिए पूर्व राजनीतिज्ञ आचार्योंने राजा को ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर स्वरूप त्रिमूर्ति कहा है। इसका रहस्य यह है कि राजा ब्रह्मा के समान प्रजा के निर्माता, विष्णु के समान पोषणकर्ता तथा महेश के समान अन्याय, अत्याचार और दुष्टों का विध्वंसक होता है। परन्तु अनेक दुष्ट, क्रूर, तानाशाही राजा, राजनेता भी हुए जो सत्ता, शक्ति, प्रभुता, सम्पत्ति का दुरूपयोग प्रजाओं को कष्ट देने में करते हैं। कुछ तो राजा आदि हुए स्वयं को सर्वेसर्वा, राष्ट्र तथा यहाँ तक कि ईश्वर सिद्ध करते हैं। उनकी अपेक्षा शक्ति सत्ता ही न्याय है और वे स्वयं उस राष्ट्र के सर्वस्व हैं। हिरण्यकश्यप, हिरणाक्ष्य, रावण, कंस, हिटलर, मुसोलिनी, नेपोलियन आदि इनके उदाहरण हैं।

कुछ कट्टरवादी धार्मिक राजा, राजनेता भी होते है जो धर्म के नाम पर अन्याय, अत्याचार, पापाचार, भ्रष्टाचार का ताण्डवनृत्य करते हैं। वे अपने संकीर्ण मत को ही सच्चा धर्म मानकर उसके ही प्रचार–

प्रसार के लिए अन्य धर्मावलम्बियों को विवश करके धर्म परिवर्तित करवाते हैं, और जो धर्म परिवर्तन नहीं करते हैं उनकी सम्पत्ति छीन लेते हैं, देश से निष्कासित कर देते हैं या सवंश को ही मृत्यु के घाट उतार देते हैं। कुछ ऐसे भी राजा होते है जो अन्य धार्मिकों के राष्ट्र को, उनकी सभ्यता संस्कृति को नष्ट करने के लिए उनके देश पर भी आक्रमण कर लेते हैं। उस आक्रमण में उनके धर्मस्थल, मूर्ति, मंदिर, धर्मग्रंथ, धार्मिक साधुसंत एवं धर्मानुयायी स्त्री पुरुष यहाँ तक कि बच्चों तक की भी हत्या कर देते हैं। और वे इसको धर्म विजय मानते हैं। यदि यह धर्म विजय है और ऐसे कृत्य करनेवाले धार्मिक आस्तिक है तो शेर, चीता, मेड़िया, कसाई सबर्त अधिक धार्मिक आस्तिक होंगे। एसे दुष्ट आस्तिक के विरोध करने वालों को वे नास्तिक मानतें है। और वे उनसे तथा उनके अनुयायियों के साथ क्रूरता का व्यवहार करते हैं। ऐसे नास्तिकों में स्वपिता का विरोध करनेवाला प्रहलाद, अपने भाई रावण का विरोध करनेवाला विभीषण, मामा कंस का विरोध करने वाले श्रीकृष्ण, दुर्योधन का विरोध करने वाले विदुर एवं पाण्डव, दास प्रथा का विरोध करनेवाला अब्राहिम लिंकन, मजदूरों के शोषण का विरोध करनेवाला कार्ल मार्क्स, भारत में अंग्रेजी शासन का विरोध करने वाले भारतीय देशप्रेमी नेता आदि इस श्रेणी में आते हैं। ऐसे राजनीति के नास्तिकों के कारण ही लोकतन्त्र साम्यवाद, समाजवाद की स्थापना हुई तथा प्रजाओं का शोषण, अत्याचार, अनाचार, पापाचार में कुछ कमी आई।

४. आर्थिक क्षेत्र के नास्तिक

मनुष्य को जीवन पापन करने के लिए भोजन, जल, वस्त्र, गृह, औषधि तथा कुछ जीवनोपयोगी वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। इन सामग्रियों की उपलब्धि/ क्रय जिसके माध्यम से होता है उसे संक्षिप्तः अर्थ कहते हैं। अथवा जीवन यापन की प्रयोजन भूत भौतिक सामग्रियों को अर्थ कहते हैं। क्योंकि 'अर्थ ' का अर्थ ही प्रयोजन है। इसीलिए

अर्थ की आवश्यकता मानव के भौतिक जीवन में पग-पग पर होती है। इस कारण से भी मानव अर्थसंग्रह में पुरुषार्थ करता है। भारतीय दर्शन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थ में अर्थ पुरुषाथ को एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। क्योंकि अर्थ से जीवन निर्वाह होता है, और जीवित व्यक्ति ही धर्म कर सकता है। विकास कर सकता है, कामसुख भोग कर सकता है। परन्तु जिस प्रकार हर क्षेत्र में उपलब्धि का सदुपयोग न होकर दुरुपयोग होता है उसी प्रकार अर्थ क्षेत्र में भी होता है। धर्म के अनुसार पुण्य से धन, वैभव, सम्पत्ति मिलती है इसीलिए जिसके पास थोड़ी बहुत सम्पत्ति होती है वह अपने को धार्मिक, पुण्यशाली मानता है, और दूसरे लोग भी इसी को मान्यता देते हैं। वह धनी व्यक्ति स्वयं को धार्मिक, धनी, पुण्यात्मा सिद्ध करने के लिए तथा प्रसिद्धि, प्रभुता पाने के लिए न्याय-अन्याय से भी धन शोषण करता है। एसे व्यक्ति के द्वारा किया गया दान, पुण्य भी अयोग्य है। यथा

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं संपकेन स्नास्यामीति विलम्पति ॥ (१६) (इष्टोपदेश)

''शुद्धधनैर्विर्वधन्ते, सतामपि न सम्पदाः।
न हि स्वच्छाम्बुभिः पूर्णाः, कदाचिदपि सिन्धवः''॥
(४५) (आत्मानुशासन)

जो निर्धन व्यक्ति सेवा, कृषि आदि कर्म से धन संचय करके पात्रदान, देवपूजा त्याग आदि करके अपूर्व पुण्य प्राप्त करना चाहता है वह स्नान कर लूँगा इस प्रकार विचार करके स्व शरीर को कीचड़ से युक्त करता है। अर्थात् - जैसे कोई निर्मल शरीरवाला सोचता है कि मैं बाद में स्नानादि से शरीर को स्वच्छ कर लूँगा इस प्रकार से स्वच्छ शरीर को मल से लिप्त कर लेता है उसी प्रकार जो अविवेकी, असमीक्षाकारी पाप से धन उपार्जन करके पात्र दानादि पुण्य से पाप को नष्ट कर दूँगा ऐसा मानकर धनार्जन करता है वह भी अयोग्य है क्योंकि शुद्ध वृत्ति से किसी के भी धनार्ज सम्भव नहीं है।

सज्जनों की सम्पत्ति भी शुद्ध धन से बनती नहीं है जैसा कि स्वच्छ पानी से कदापि नदियाँ परिपूर्ण नहीं होती हैं। इस प्रकार जो दान करने के लिए भी अन्याय से धन उपार्जन करता है वह अधार्मिक अज्ञानी है, क्योंकि, उसका साधन अपवित्र है। इतना ही नहीं वह उस धन से वस्तुतः धर्म नहीं चाहता प्रसिद्धि, कीर्ति चाहता है। क्योंकि वास्तविक धार्मिक व्यक्ति धर्म का स्वरूप, उसका साधन एवं उसका उद्देश्य जानता है। धर्म आत्मा का स्वरूप है। आत्मा ही उसका साधन एवं सिद्धि है। न्यायपूर्वक धन कमानेवाला गुरुओंका आदर सत्कार करनेवाला, महान गुरुओं को पूजनेवाला, परनिंदा, कठोरता आदि अवगुणों से रहित, प्रशस्त वाणी बोलनेवाला, परस्पर में एक दूसरे को हानि न पहुँचाते हुए धर्म और काम का सेवन करनेवाला, शास्त्रानुसार खानपान करनेवाला, सदाचारी पुरुषों की संगति करनेवाला, विचारशील, सद्गुणों को धारण करनेवाला, परके द्वारा किये गये उपकार को माननेवाला, दयालु, पापभीरु, सत् प्रवृत्तियों वाला होता है। स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, छल/कपट, चोरी आदि निंदित उपायों से धनोपार्जन रहित तथा अपने अपने वर्णो के अनुसार सदाचार को न्याय कहते हैं। न्यायपूर्वक धनोपार्जन करना, न्यायोपात्त धन कहलाता है। जो मनुष्य न्यायपूर्वक, धन उपार्जन करता है वही श्रेष्ठ मानव है। क्योंकि प्रायः सभी मानवों की मनोवृत्ति धनोपार्जन की होती है। इसीलिए धनेच्छुक मानव यहाँ तक कि न्याय-अन्याय का विचार न करने धनोपार्जन करते हैं। लेकिन न्याय से उपार्जन किया गया धन ही इसलोक व परलोक में सुख देने वाला होता है। अन्यायपूर्वक उपार्जन किया गया धन तो अधिक से अधिक दश वर्ष तक रह सकता है और ग्यारहवाँ वर्ष लगने पर मूल सहित नष्ट हो जाता है। न्यायमार्ग पर चलनेवाले मानव की तिर्यञ्च भी सहायता करते हैं और अन्यायपूर्वक प्रवृत्ति करनेवालों का साथ सगा भांई, माता-पिता भी नहीं देते हैं। इसीलिए न्यायपूर्वक ही धन कमाना चाहिए। परन्तु वर्तमान में प्रायः दिखाई देता है कि अनेकलोग अनैतिक व्यापार, हिंसात्मक व्यापार, निषिद्ध व्यापार आदि करके धन कमाते हैं और उनसे दानादि करके धर्म करना

चाहते हैं। जैसे कुछ व्यक्ति स्वयं तो शराब नहीं पीते किन्तु शराब की फैक्ट्रियाँ, दुकानें चलाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वयं तो बीड़ी नहीं पीते लेकिन बीडी की दुकान, व फैक्ट्री में बीड़ी बनवाते हैं। कुछ व्यक्ति स्वयं तो मांस नहीं खाते लेकिन डालडा में मांस चर्बी मिलाकर दूसरों को खिलातें हैं, कुछ व्यक्ति स्वयं तो चर्म निर्मित वस्तुओं का प्रयोग नहीं करते लेकिन चर्म की विभिन्न सामग्रियाँ, जूते चप्पल, बैल्ट, सूटकेश, पर्स, लिपिस्टिक, नेलपॉलिश, शेम्पू आदि निर्माण करके बेचते हैं। वे सोचते हैं हम स्वयं न तो खाते हैं, न ही प्रयोग करते है हम तो केवल धन कमाने के लिए व्यापार रूप में प्रयोग में लाते है इसमे हमारा क्या दोष है ? परन्तु उन्हें जान लेना चाहिए कि केवल पाप कृत रूप में नहीं होता परन्तु पाप मनसा, वचसा, कर्मणा, कृत, कारित, अनुमोदना से भी होता है। उनकी सोच ऐसी है कि हम तो विष पीते नहीं पिलाते हैं क्या दोषकारक है ? परन्तु विवेकपूर्वक विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि विष पीने पर स्वयं की ही हानि, या या स्वयं की हत्या एक बार ही होती है किन्तु विष पिलाने पर अनेक व्यक्तियों की हिंसा होती है। इसी प्रकार माँस खाने से, बीड़ी, तम्बाकु आदि नशीले पदार्थों का सेवन करने से स्वयं तो पाप कमाता ही है लेकिन उत्पादन – विक्रय से भी पाप का अर्जन करता ही है। एवं दूसरों से भी पाप का अर्जन करवाता है। इन हिंसात्मक व्यापारों से वातावरण भी प्रदूषित होता है। विश्व में प्रत्यक्ष – परोक्ष रूप से हिंसा व अत्याचार, पापाचार को बढ़ावा मिलता है। इसीलिए उपर्युक्त प्रकार के जो निषिद्ध व्यापार करता है वह कभी भी धार्मिक नही हो सकता है।

''पुनाति पवित्रि कियते इति पुण्यं'' अर्थात् जो जीव को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं। इस दृष्टि से अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, दया, क्षमा, नम्रता, सरलता, निर्लोभता, परोपकारिता, दान, त्याग, पुण्य है। इससे सिद्ध होता है कि जो धन–सम्पत्ति संग्रह करता है वह पापी है, अधार्मिक है, परिग्रही है, लोभी तृष्णावान है। ऐसे पापों को करता हुआ जो उससे गर्व/ अहंकार/ मद का अनुभव करता है वह

तो और भी अधिक पापी है, एक तो परिग्रहादि से पापी और उस पाप को अच्छा/ पुण्य/ धर्म माननें रूप पापी तथा उस सम्बन्धी मदरूपी पाप से अत्यधिक पापी होता है। इसीलिए कहा है :–

पुण्णेण होई विहवो विहवेण होई मई मय।
मई मयेण पापं तम्हा तं पुण्यं मा होऊ ॥

पुण्य (पापानुबन्धी पुण्य) से विभव होता है, विभव से मति, भ्रम/ मद होता है तथा मति भ्रम से पाप होता है अतः ऐसा पुण्य मुझे न होवें।

उपर्युक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि जो न्याय से उपार्जन धन का सदुपयोग दानादि में करता है, उससे मद आदि नहीं करता उसका पुण्य, अर्थ, धन प्रयोजन भूत है, अन्य तो अनर्थ है।

कुछ लोग अन्याय, अत्याचार, शोषण, व्याज, मिलावट, धोखाधड़ी, चोरी–डकैती, युद्ध, लूट–पाट रूपी पाप से धन संग्रह करके स्वयं को पुण्यात्मा, धर्मात्मा सिद्ध करते हैं और जिन्हें वे शोषण करके गरीब बना देते है उन्हें वे पापी मानते हैं। दूसरे कुछ अन्य लोग भी ऐसा ही व्यवहार करते हैं। कुछ लोग दूसरों से शोषित होने के कारण स्व–पाप मानकर सहन करते रहते हैं जिससे दूसरे और भी अधिक शोषिण करते हैं। ऐसे आस्तिकों के कारण समाज में शोषक – शोषित, मालिक–मजदूर, पूँजीपति–मजदूर, जमींदार–भूमिहर, मजदूर, धनी–गरीबरूपी समस्यायें/ विषमतायें उत्पन्न होती हैं जिससे अशान्ति, कलह, फूट, चोरी, डकैती जन्म लेती है। इसी प्रकार कभी न रुकनेवाला यह चक्र अबाध गति से भ्रमण करता रहता है। ऐसे आस्तिकों द्वारा चलाया गया यह चक्र को थोरो, कार्ल मार्क्स, एजिंल्स, लैनिन, महात्मा गांधी, विनोबा भावे आदिने रोक ने की कोशिश की जिससे उस चक्र की गति में कुछ मन्दता आई।

सामान्यतः जो वस्तुतः जो अन्तरंग से तो आस्तिक नहीं होते हैं, परन्तु आस्तिकता का दंभ भरते हैं और उसे सिद्ध करने के लिए हथकण्डे करते हैं ऐसे आस्तिक लोग नम्र, उदारवादी, परोपकारी नास्तिक से भी अधिक धूर्त, कठोर, क्रूर, शोषक, हिंसक, अत्याचारी, पापाचारी, निष्ठुर

होते हैं। उदारवादी ऐसे नास्तिक धर्मान्ध आस्तिक से अधिक सेवाभावी सरल, अवेचक, मृदु, परोपकारी होते हैं। अन्तर्राष्ट्र, राष्ट्र, समाज, परिवार से लेकर धर्मस्थलों में जो अन्धानुकरण, भ्रष्टाचार, ठगी, पक्षपातादि है उसमें अधिकांश योगदान धर्मान्ध आस्तिकों का अधिक है नास्तिकों का कम है या नहीं के बराबर है।

''यादृशी भावना यस्य सिद्धि र्भवति तादृशी'' अर्थात् जिस प्रकार भावना होती है, उसी प्रकार सिद्धि होती है क्योंकि 'भावना भवनाशिनी, भावना भववर्धिनी' अर्थात् पवित्र भावना से भव का नाश होता है, तो दूषित भावना से भव की वृद्धि होती है। इसीलिए पूजक को, धार्मिक व्यक्तियों को हरसमय, हरतरह से भाव को सम्हालना, चाहिए व परिमार्जित करना चाहिए। पूजा, अर्चना, दान, तीर्थयात्रा स्वाध्याय आदि का परम लक्ष्य आत्मा को निर्मल बनाना है और मोक्ष प्राप्त करना है उसका आनुशंगिक फल पुण्य उपार्जन है जिसका फल संसार की विभूति है। परन्तु जो सम्पत्ति, पुत्रप्राप्ति, केस में जययुक्त होना, शत्रु को कष्ट पहुँचाना आदि क्षुद्र लौकिक्य सिद्धि के लिए तथा परलोक में स्वर्ग-प्राप्ति/ भोग-प्राप्ति आदि के लिए पूजा दान आदि करता है तो उसका भाव दूषित उद्देश्य क्षुद्र होने के कारण यर्थाथ नहीं है। निदान करने से फल की उपलब्धि भी कम हो जाती है, इसलिए प्रत्येक धार्मिक कार्य पवित्र उद्देश्य से पवित्र साधनों से ही सम्पादन होना चाहिए। भोग, धन, स्त्री, पुत्र, सत्री, प्रसिद्धि, कीर्ति आदि की कामना से धर्म करना जैसे भीख माँगना है।

अनुभवात्मक विवेक बिना समस्त ज्ञान, अजीर्ण भोजन के समान उपकारी कम अपकारी अधिक है ।

वैज्ञानिक युग में भारत की अवैज्ञानिकता

अति ही प्राचीन काल से ही भारत उन्नत ज्ञान-विज्ञान, दर्शन, गणित, आयुर्वेद, संगीत, कला, शिक्षा, खान-पान वेष-भूषा, आचार-व्यवहार, खगोल, रीति-रिवाज, सभ्यता, संस्कृति, चिन्तन, अभिव्यक्ति के कारण विश्व गुरु, सोने की चिड़िया, दूध-घी की नदी वाला देश रहा है। इसका कारण है यहाँ के सर्वज्ञ, बुद्ध, ऋषि-मनीषी, वैज्ञानिक, आयुर्वेदाचार्य, समाजशास्त्री, मनोवैज्ञानिक आदि तथा यहाँ की प्राकृतिक जलवायु, प्राकृतिक सम्पदा आदि। दीर्घ अनुभव जन्य तथा आत्मोत्थ अतीन्द्रिय ज्ञान आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान से भी अधिक सार्वभौम तथा सर्वजीव हितकाररी एवं सर्वजीव सुखकारी होता है क्योंकि अनुभव जन्य ज्ञान प्राकृतिक होने से शिशु के लिए माता के स्तनपान के समान होता है और आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान कुछ अपेक्षा कृत्रिम होने से दूध के पावडर के समान होता हैं।

भारत के ज्ञान-विज्ञान के कारण नहीं परन्तु भारत के असंगठन के कारण भारत जो प्रायः दो हजार वर्ष तक आंशिक या पूर्ण गुलाम रहा उसके कारण भारत की मानसिकता भी गुलाम हो गई तथा आक्रमणकारी, लुटेरे, विध्वंसक शासक की जातिओं को श्रेष्ठ मानकर उसका अन्धानुकरण करती रही और अभी भी कर रही हैं। वह यह नहीं जान पा रही हैं कि आक्रमणकारिओं की जन्मभूमि सभ्यता, संस्कृति, रीति-रिवाज भारत से प्रायः विपरीत हैं उसे कैसे विवेक रहित होकर स्वीकार किया जावे ? जो सत्य, हितकारी योग्य है उसे तो स्वीकार करना ही चाहिए। यहाँ तक कि जो वृक्ष जिस जलवायु भूमि में पैदा होता है 'फलदान करता है वह वृक्ष भी विपरीत जलवायु में न पैदा होता है होने पर भी अच्छा फलदान नहीं करता है। जैसा कि नारियल का वृक्ष समुद्र उपकूल में अच्छा फलदान करता है वैसा उत्तरप्रदेश, बिहार की गंगानदी के उपजाऊ उपत्यका में नहीं भी भले इसकी मिट्टी कितनी भी अच्छी क्यों न हो।

अवैज्ञानिक खान-पान

सात्विक – सादा – ताजा शाकाहार, अन्नाहार, दूग्धाहार, फलाहार, घी, ठण्डाई, सरबत, फलरस भारत के लिए योग्य हैं। इससे शारीरिक, मानसिक स्वास्थ्य, हृष्ट, पुष्ट, तुष्ट रहता है। श्रम, समय, साधन–अर्थ कम व्यय होता है, प्रदूषण कम होता हैं। इन भोजन, पेय के स्पर्श, गन्ध, वर्ण, स्वाद, आकार प्रकार भी उत्तम रहते हैं। इस भोजन पेय से अनेक शारीरिक मानसिक रोग नहीं होते हैं, अनेक रोग की चिकित्सा इससे हो जाती हैं। तथापि भारत के कुछ लोग मांस, मछली, अण्डा, शराब, बीडी, सिगरेट, तम्बाकू, गुटखा, पानपराग, चाय, काफी, कोकाकोला, पेप्सी, फास्टफूड, डिब्बा बन्द रेडिमेड भोजन, बजार – होटल का बना हुआ अशुद्ध भोजन करते हैं। भारत में स्नान करके शुद्ध वस्त्र परिधान करके हाथ – पैर – मुख धोकर कुल्ला करके जमीन में पीढ़ा (पाटा) के उपर बैठकर हाथ से मौनपूर्वक, भोजन करने की पद्धति हैं परन्तु कुछ लोग स्नान हाथ – पैर मुख धोये बिना कुल्ला किये बिना, जूते चप्पल पहनकर खड़े – 2 घूमते–घामते, गप्पे लगाते, झगड़ा करते हुए भोजन करते हैं। इसमें उपरोक्त शुद्ध भारतीय पद्धति के गुण के विपरीत दुर्गुण हैं।

प्राकृतिक इन्धन, देशी चूल्हा, मिट्टी, लोहा, पित्तल आदि के बर्तन में धीमी – 2 आंच से देशी घी, दूध, खाण्डसारी शक्कर, गुड़ आदि से बने हुए भोजन में जो तत्त्व, सत्व, रस, रंग, गन्ध है वह केरोसीन, स्टोव, गैस, एलुमिनीयम, स्टील बर्तन, डालडा, रिफाइन तेल, चीनी बजार, के पैकेट बन्द आटा, मसाला आदि में कहाँ हैं ? परंतु कुछ आधुनिक – प्रगतिशील कहलाने वाले इसे फैशन/ स्टेण्डर्ड मानते हैं।

अवैज्ञानिक वेष-भूषा - व्यवहार

भारत उष्णप्रधान देश होने के कारण यहाँ के लिए गरमी के दिनों में सूती सफेद धोती, दुपट्टा, कमीज, साड़ी, ब्लाउज आदि योग्य हैं इससे वायु संचालन, रक्त संचालन पसीना–शोषण तथा शुष्क होना आदि उत्तम

प्रकार से होता है जिससे स्वास्थ्य अच्छा रहता है शरीर और वस्त्रों से दुर्गन्ध नहीं आती है, चर्मरोग, एलर्जी आदि रोग नहीं होते हैं। कुछ लोग तो गरमी में भी काला कोट पैंट, टाई, चमड़े के जूते पहनकर स्वयं को Up to date मानते हैं और दुसरों को Out of date मानते हैं। ऐसे व्यक्तियों को मूत्र–त्याग भी खड़े खड़े करना पड़ता हैं उन्हें भगवान गुरु आदि को प्रणाम तथा भोजन आदि के लिए जमीन में पालथी मारकर बैठने में असुविधा होती है। इसलिए उन्हें खड़े होकर या कुर्सी आदि में बैठ कर सब काम करना पड़ता है। इससे सीधी पृथ्वी की ऊर्जा उन्हें नहीं मिलती है। खड़े होकर मूत्र–त्याग करने से पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल के कारण कु–प्रभाव पड़ता है। मूत्र – वस्त्र शरीर आदि में भी गिर जाता है। गोदुहासन में बैठकर मल–मूत्र त्याग करने से भगन्दर आदि रोग नहीं होते हैं। मल–मूत्र निष्कासन सही होता है। खडे–2 मूत्र–त्याग से उपर्युक्त सुप्रभाव के विपरीत, कुप्रभाव पड़ता है।

छोटे – 2 बच्चों को गरमी में भी सूट–बूट, पैंट, टाई से जकड़े रखते हैं जिससे उनका स्वाभाविक विकास भी नहीं हो पाता हैं जैसा कि गमले में लगाया हुआ वृक्ष बन्द कमरे में अधिक विकास नहीं कर पाता है क्योंकि दोनों को पर्याप्त शुद्ध सूर्यकिरण, वायु, वातावरण नहीं मिलता है।

भारतीय संस्कृति के गुणगान करनेवाले भी कुछ व्यक्ति उपर्युक्त भारतीय पोषाक को न स्वयं पहनते हैं और जो पहनते हैं उन्हे गंवार, असभ्य, गरीब, नंगा मानते हैं। कुछ तो धार्मिक कार्यक्रम में भी भारतीय पोषाक पहने में अपमान अनुभव करते हैं। और कुछ धार्मिक कार्यक्रम के अतिरिक्त अन्य समय में पहनने में अपमान अनुभव करते हैं। कुछ तो गंवार, निरक्षरी, भोन्दू, गरीब व्यक्तिओं को भी भारतीय वेष–भूषा अपमानकारक, असभ्य लगती है ।

अवैज्ञानिक सफाई साजसज्जा एवं शृंगार

स्वास्थ्य, सुंदरता, प्रसन्नता, स्वच्छता, पर्यावरणकी शुद्धता के लिए सफाई, साज–सज्जा एवं शृंगार की आवश्यकता होती है। इसके लिए

पर्यावरण ग्राम–नगर, घर, शरीर, वस्त्र, पात्र आदि की सफाई आदि की जाती है। एतदर्थ वृक्षारोपण, प्रदूषण नहीं करना, जहाँ तहाँ गन्दगी नहीं करना, शरीर, वस्त्र आदि को धो–पोंछकर सजाकर रखा जाता है। परन्तु अधिकांश वृक्षारोपण के परिवर्तन में वृक्ष काटते हैं, रास्ता वनभूमि आदि में वृक्षारोपण करेंगे तो छायादार, फलदार औषधि गुणयुक्त नीम, आम, जामुन आदि वृक्षारोपण तो कम करते हैं परन्तु कांटेदार, भूमिको बंजर करनेवाले अनुपयुक्त विलायती बबूल, वेशर्मी, कग्रेंस, घांस रोपते हैं इसी प्रकार घर के आसपास और घर में तुलसी, अनार, अंगुर, जूही, मल्लीका, शाग, सब्जी, नींबू, अमृद के तो वृक्ष कम लगायेंगे परन्तु कांटेदार विभिन्न प्रकार के थूहर, केक्टेस के वृक्ष तक घर के अंदर गमले में लगायेंगे। तुलसी आदि वृक्ष से पर्यावरण शुद्ध होता है औषध, फल–फूल प्राप्त होते हैं, वातावरण सुंदर, सुगन्धित, शांत, मनमोहक, आँख – शरीर – मन को हितकारी होता है। कांटेदार वृक्ष से न तो फल – फूल औषधि सुगन्धी प्राप्ती होती है परन्तु कांटा, चुभता, और अपशुकन/ अशुन्भ/ कलह का कारण बनता है।

शरीर को स्वच्छ और स्वस्थ्य रखने के लिए शरीर में तिली के तेल आदि से मालिश करके स्वच्छ छना हुआ। जीव रहित पानी से मुलतानी मिट्टी, बेसन, सिकाकाई, मंजीठा, दही, दूध, छाछ, नींबु आदि लगाकर स्नान किया जाता है तथा महेंदी, हल्दी, ब्राह्मी – आंवला तेल, फूल, फूलमाला आदि स्वास्थ्य कर अहिंसक प्रसाधन/ शृंगार सामग्री प्रयोग किया जाता है। परन्तु अधिकांश भारतीय चर्बी, हड्डी, अण्डा, रसायन से बने हुए साबुन आदि लगाते हैं तथा नेलपालिश लिपस्टीक, सेन्ट, पावडर, क्रीम, लोशन प्रयोग करते हैं जो कि हिंसाकारक के साथ अस्वास्थ्यकर हैं। दांत, मुख शुद्धि के लिए औषधीय गुणयुक्त, नीम, करंज देशी बबुल आदि की दंतुन को दांत से चबाकर उसके एक भाग को ब्रूश के जैसा बनाकर उससे दांत, मसूड़ा को घिस घिस कर साफ करते हैं और अल में दन्तुन को दो भाग में फाडकर जिव्हा को इससे दांत, मसूड़ा, जिव्हा की सफाई के साथ उसके व्यायाम भी हो जाता है जिससे पायरीया, दुर्गन्ध, दांत हिलना, दांत मसूड़ा की पीड़ा, कीड़े लगना, मबाद आना,

दंतक्षय, खून – बहना आदि रोग नहीं होते हैं। परन्तु अधिकांश भारतीय और उसमें भी विशेषतः साक्षर, शहरी, धनी व्यक्ति उपर्युक्त क्रिया को अयोग्य या असुविधाजनक या गंवारु मानकर रसायन, हड्डी चर्बी से निर्मित टूथपेस्ट से ब्रूश करते हैं। इसमें हिंसा के साथ उपर्युक्त गुणों के विपरीत दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं।

अवैज्ञानिक कार्य प्रणाली

मनुष्य के आचार, विचार, व्यवहार का समुच्चय ही उसका व्यक्तित्व है। और इस व्यक्तित्व की प्रखरता, प्रबलता, प्रामाणिकता, पारदर्शिता ही उसका विकास है। उसकी श्रेष्ठता है, ज्येष्ठता है तथा उपर्युक्त व्यक्तित्व से विपरीत उसका विनाश है, उसकी निकृष्ठता है, उसकी पतितता है। इसीलिए भारतीय महापुरुषोंने स्वयं को महान् बनाने के लिए उत्कृष्ट व्यक्तित्व को अपनाया और उसका प्रचार–प्रसार तथा उपदेश किया। इस उत्कृष्टता के लिए **''सादा जीवन उच्च विचार''** को अंगीकार किया तथा सहज–सरल, नम्र, परिश्रम, समनायुबद्धता, स्वावलम्बन, सेवा, दया, दान, त्याग, तपस्या, समता, साधना, ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन को धर्म, कर्तव्य चरित्र माना। इसका फल सुख, शान्ति, समृद्धि, स्वर्ग, मोक्ष कहा। इससे शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, वैश्विक प्रगति, उन्नति भी होती है, परंतु वर्तमान में अधिकांश भारतीय उपर्युक्त सुगुणों के विपरीत दुर्गुणों को अपनाये हुए हैं। वे सादा जीवन को गरीबी, स्वावलम्बन/ शारीरिक श्रम को पिछड़ापन, सेवा/ वैय्यावृत्ति को दासवृत्ति, सहज/ सरल/ नम्रता को भोन्दूपना, ज्ञान/ ध्यान/ स्वाध्याय/ मनन/ चिन्तन/ को निकम्मापना, परोपकार/ दया/ करुणादान/ त्याग को बेकार का काम मानते हैं। इसीलिए तो ज्ञान–विज्ञान सभ्यता–संस्कृति से सम्पन्न भारत हजारों वर्षों से गुलाम रहा और अभी भी मानसिक गुलामी में जी रहा है। इसीलिए डॉक्टर अपनी औषधि की पेटी लेकर जाने में, तो विद्यार्थी अपनी पुस्तकें लेकर जाने में, तो खिलाडी/ पहलवान/ व्यायामकर्ता/ श्रमिक टहलने वाले तक को पैदल चलने में अपमान/ लज्जा अनुभव होती है। इसी प्रकार धार्मिक साधु, सन्त, महन्त, सेठ, साहूकार, नेता, शिक्षित व्यक्तियों को सादा जीवन, सेवा, धर्म,

परिश्रमपूर्ण काम करने में छोटापन/ खोटापन अनुभव होता है। इसीलिए तो भारत उपर्युक्त दुर्गुणों के साथ-साथ भारतीय लोग समयानुबद्धता, कर्तव्यनिष्ठा, अनुशासन/ सहिष्णुता/ कृतज्ञता आदि गुणों को कम महत्त्व देते हैं। कम अपनाते हैं। इसीलिए भारत विज्ञान, आविष्कार, प्रौद्योगिक, शिक्षा, सम्पन्नता, स्वास्थ्य स्वच्छता, अनुशासन, पारिदर्शिता, प्रामाणिकता, प्रभुत्व, शक्ति, सामर्थ्य से अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान की द्रष्टि से अमेरिका, जापान, जर्मन, ब्रिटेन आदि अर्वाचीन सभ्य देशों से भी पीछे है।

सादा जीवन से साधनों की कम आवश्यकता होगी जिससे तृष्णा, शोषण, प्रदूषण, आपा-धापी, संक्लेश, तनाव कम होगा। उच्चविचारों से शारीरिक ग्रंथियों से उत्तम, सन्तुलित हितकारी, रसस्राव होगा जिससे शारीरिक, मानसिक, स्वास्थ्य उत्तम रहेगा, मानसिक शक्ति, प्रज्ञा, स्मरणशक्ति की वृद्धि होगी। उत्तम विचार से उत्तम आचार, व्यवहार, आहार होगा जिससे स्वयं को सुख, शान्ति, समृद्धि मिलेगी तथा दूसरे भी प्रसन्न होगे प्रभावित होकर सहायता भी करेंगे। स्वावलम्बन/ कर्तव्यनिष्ठा/ व्यवस्थित कार्य प्रणाली/ समयानुबद्धता/ अनुशासन से कार्य शीघ्र समय पर होगा, शारीरिक – मानसिक स्वास्थ्य उत्तम रहेगा, दूसरों की मुखापेक्षी/ परावलम्बन/ गुलामी नहीं रहेगी/ इसके साथ-साथ प्रायोगिक ज्ञान/ अनुभव/ दक्षता/ कार्यक्षमता बढ़ेगी जिससे कार्य भी सरल – सहज रूप से उत्तम होगा और उस अनुभव से नवीन कार्यों का भी आविष्कार हो पायेगा।

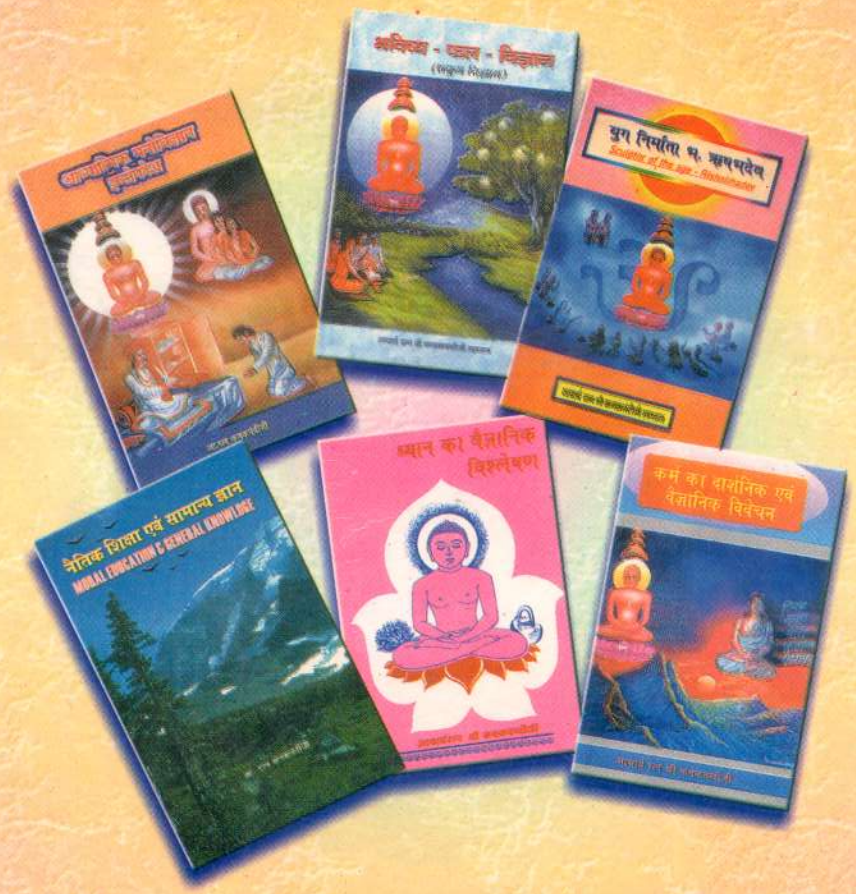
युग निर्माता भ. ऋषभदेव
नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान
MORAL EDUCATION & GENERAL KNOWLEDGE
ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण
कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन